नेक औरतें

(भाग-2)

लेखक
मतीन तारिक़ बाग़पती

अनुवादक
गुलज़ार सहराई

नामों की सूची

1. हज़रत राबिआ (रह.) 9
2. हज़रत इमाम रबीआ (रह.) की माँ 14
3. हज़रत शअ्वाना (रह.) 17
4. हज़रत सैयदा नफ़ीसा बिन्ते हसन (रह.) 21
5. हज़रत फ़ातिमा (रह.) बिन्ते अब्दुल मलिक बिन मरवान 25
6. हज़रत अमीना ख़ानम (रह.) 29

कुछ अल्फ़ाज़ के मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएँगे जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोइ परेशानी न हो। ऐसे अल्फ़ाज़ ये हैं :

अलै०, अलैहि० : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'अलैहिस्सलाम'**,यानी 'उनपर सलामती हो।' नबियों और फ़रिशतों के नाम के साथ इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए ये अल्फ़ाज़ बढ़ा देते हैं।

रज़ि० : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **रज़ियल्लाहु अन्हु**, इसका मतलब है 'अल्लाह उनसे राज़ी हो !' **'सहाबी'** के नाम के साथ यह इज़्ज़त और मुहब्बत की दुआ बढ़ा देते हैं।

सहाबी उस ख़ुशक़िस्मत मुसलमान को कहते हैं जिसे नबी सल्ल० से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। **सहाबी** की जमा (बहुवचन) **सहाबा** और मुअन्नस (स्त्रीलिंग) **सहाबियः** है।

रज़ि० अगर सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं और अगर **सहाबा** के लिए इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** पढ़ते हैं।

सल्ल० : इसकी मुकम्मल शक्ल है – **'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम'**। इसका मतलब है 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे !'

हज़रत मुहम्मद का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए यह दुआ बढ़ा देते हैं।

दुनिया एक पूँजी है

और

सबसे बेहतरीन पूँजी अच्छी और नेक बीवी है।

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह रहमान रहीम के नाम से।"

दो शब्द

इस्लाम ने औरतों को जो हक़ दिए हैं उनके अनुसार वे ज़िन्दगी के हर शोबे में तरक़्क़ी कर सकती हैं। उन्हें बहुत-सी इजतिमाई ख़िदमतें अंजाम देने का शरई हक़ हासिल है। ऐसा हरगिज़ नहीं है कि औरतें सिर्फ़ घर के काम काज या बाल-बच्चों की परवरिश के लिए ही पैदा की गई हैं, बल्कि वे शरई हुदूद के अन्दर हर ख़िदमत अंजाम दे सकती हैं। शरीअत औरत को इस क़ाबिल देखना चाहती है कि वह भी समाज की ख़िदमत कर सके और उसके हाथों हर भले काम अंजाम पाएँ।

परदे का हुक्म जारी होने के बाद एक मौक़े पर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने हज़रत सौदा (रज़ि.) को मुख़ातिब कर के फ़रमाया:

"बेशक अल्लाह ने तुम्हें अपनी ज़रूरतों के लिए घर से बाहर निकलने की इजाज़त दी है।" (हदीस: बुख़ारी)

अल्लाह तआला ने औरतों को जो हक़ दिए हैं उनसे औरतों ने फ़ायदा उठाया है और नबी (सल्ल.) के दौर में भी औरतों ने सामाजिक कामों में अपना हिस्सा अदा किया है।

ऐसे ही कुछ बहादुर और जाँबाज़ औरतों का ज़िक्र इस किताब 'नेक औरतें' में किया गया है। उनके वाक़िआत को पढ़ने से हमें यह मालूम होता है किस तरह इन औरतों ने ज़ुल्म सहकर, बहादुरी के साथ मर्दों के शाने-ब-शाने चल कर इस्लाम को फ़रोग़ दिया। इन नेक औरतों ने कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि औरत वे काम नहीं कर सकती जो मर्द करते हैं बल्कि उन्होंने मैदाने जंग में भी यह साबित कर दिया कि औरतें किसी तरह कम नहीं और शरीअत ने जो हक़ उन्हें दिए हैं उनकी पाबन्दी के साथ वे हर मैदान में अपना किरदार अदा कर सकती हैं।

हमें उम्मीद है कि इन नेक औरतों के वाक़िआत पढ़ने के बाद आपमें भी उन जैसी बनने का जज़्बा पैदा होगा। हमारी अल्लाह से दुआ है कि आप भी इन नेक औरतों के नेक किरदार को अपनी ज़िन्दगी में शामिल करें और इन जैसी बनने की कोशिश करें। अल्लाह आपकी कोशिशों को क़बूल फ़रमाए।

—प्रकाशक

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह रहमान रहीम के नाम से।"

हज़रत राबिआ (रह.)

बहुत दिनों की बात है जब आदमी भेड़-बकरियों की तरह बिका करते थे, ज़ालिम लोग मर्दों और औरतों को ग़ुलाम (दास) बना लिया करते थे और उनसे कठिन से कठिन काम लेते थे। कहते हैं कि उस ज़माने में बसरा नामक नगर में सलमान नाम के एक ग़रीब व्यक्ति रहते थे। उनकी चार लड़कियाँ थीं। अरबी भाषा में 'राबिआ' चौथी संख्या को कहते हैं। इसी के अनुरूप सलमान की सबसे छोटी पुत्री का नाम राबिआ था।

हज़रत राबिआ (रह.) बचपन ही से बड़ी भोली-भाली और अच्छी सूरत-शक्ल की थीं। हर कोई उनको प्यार करता मगर ख़ुदा की क़ुदरत, ज़रा होश संभाला तो बाप का इन्तिक़ाल हो गया। कुछ समय बाद नगर में अकाल पड़ा, उसी अकाल में उनकी तीनों बहनें अल्लाह को प्यारी हो गईं और ये बेचारी बिल्कुल अकेली रह गईं। उस समय न उनका कोई रिश्तेदार था, न कोई साथी। न कोई ख़बर लेनेवाला और न ही कोई हिम्मत बँधाने वाला। इसी बेकसी की हालत में एक ज़ालिम व्यक्ति ने उनको ग़ुलाम बनाकर बेहद कम मूल्य पर एक धनवान व्यक्ति के हाथ बेच डाला।

संयोग से उनका मालिक भी बड़ा निर्दयी इनसान था। वह आपसे कठिन से कठिन परिश्रम कराता और अगर काम में ज़रा भी देर हो जाती या काम न हो पाता तो आपको चाबुक से मारता था। सितम पर सितम यह था कि वह आपको खाना भी पेट भरकर नहीं देता था। हज़रत राबिआ (रह.) बहुत दिन तक इन सब कष्टों को सहन करती रहीं। लेकिन थीं आख़िर इनसान, तंग आकर एक दिन रात के समय घर से निकलकर चल दीं।

रात का समय था। चारों तरफ़ सन्नाटा और अँधेरा था, लेकिन अपनी जान के डर से हज़रत राबिआ (रह.) चली जा रही थीं कि एक जगह ठोकर खाई और वे ऐसी ज़ोर से गिरीं कि बेचारी की बाँह टूट गई। उस समय न कोई हमदर्द था और न ही कोई साथी जो उन्हें उठाता या सँभालता। बस बेबसी की हालत में बेचारी ने आसमान की ओर देखकर अपने असली मालिक यानी ख़ुदा को पुकारा –

"ऐ मालिक! तू सब कुछ जानता और सबकी ख़बर रखता है। ऐ आक़ा! तुझे मालूम है कि मैं बेकस व यतीम हूँ और एक व्यक्ति की दासी हूँ।

ऐ अल्लाह! तू यह भी जानता है कि मैं उस व्यक्ति की दिन-रात सेवा करती हूँ मगर वह फिर भी मुझे कष्ट देने पर तुला है और मुझे सताता है। उसी के डर से मैं भागी हूँ और भागने में मेरी बाँह भी टूट गई।

ऐ ख़ुदा! मुझे इन तकलीफ़ों से कोई रंज व ग़म नहीं, मैं तो बस तेरी ख़ुशी चाहती हूँ।"

उन्होंने सच्चे दिल से पुकारा था इसलिए ख़ुदा ने फ़ौरन उनकी फ़रियाद सुन ली। अभी उनकी फ़रियाद ख़त्म भी न हुई थी कि उन्हें ऐसा लगा मानो कोई उनके कान में कह रहा हो –

"ऐ राबिआ! तू इस दुनिया की कुछ दिनों की ज़िन्दगी के अस्थायी कष्टों की चिन्ता न कर। अल्लाह के क़रीबी बन्दों की ज़िन्दगी हमेशा मुसीबतों में गुज़रती है।"

इस हक़ीक़त का एहसास होते ही हज़रत राबिआ (रह.) अपना दुख भूल गईं और उनका मन शान्त हो गया। वे उसी समय अपने ज़ालिम मालिक के पास लौट आईं। साथ ही उन्होंने अपनी यह दिनचर्या बना ली कि दिन भर तो अपने मालिक की सेवा करतीं, उसकी मार-पीट सहन करतीं और रात को

वास्तविक मालिक (अल्लाह) की इबादत किया करतीं।

अल्लाह तआला बड़े दयालु और कृपा करनेवाले हैं। वे किसी की मेहनत को बेकार नहीं जाने देते। चुनांचे एक दिन रात के समय उनके मालिक की जो आँख खुली तो उसने देखा कि राबिआ (रह.) एक अल्लाह, जिसका कोई साझी नहीं, के सामने सजदे में पड़ी हैं और गिड़गिड़ाकर कह रही हैं –

"ऐ अल्लाह! तू ख़ूब जानता है कि मेरी एक ही तमन्ना है, और वह है तेरी इबादत करना और तेरे आदेशों का पालन करना। इसी में मेरे लिए शान्ति है। मगर मैं क्या करूँ कि मैं दूसरे के वश में हूँ। अगर मेरे वश में होता तो एक पल भी तेरी इबादत से ख़ाली न रहती।"

हज़रत राबिआ (रह.) के मालिक के दिल पर उनकी ख़ुदा-परस्ती और नेकी का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने सबसे पहला काम यही किया कि हज़रत राबिआ (रह.) को आज़ाद कर दिया।

आज़ाद होने की उनको बेहद ख़ुशी हुई। अब दिन-रात अल्लाह की इबादत में लगी रहने लगीं। दुनिया से ऐसे बे-परवाह हो गईं कि उनको अपनी ज़रूरतों का भी ध्यान न रहता था।

एक बार किसी व्यक्ति ने हज़रत राबिआ (रह.) के फटे-पुराने कपड़े देखकर कहा कि, "ऐ ज़ाहिदा (परहेज़गार औरत)! बहुत से अमीर व धनवान लोग आपसे अक़ीदत (श्रद्धा) रखते हैं। अगर आप एक इशारा करें तो वे आपके लिए कपड़े सिलवा सकते हैं। आप क्यों इशारा नहीं करतीं?"

हज़रत राबिआ (रह.) ने उत्तर दिया, "दुनियावी ज़रूरत के लिए किसी के आगे हाथ फैलाते मुझे शर्म आती है। यह दुनिया ख़ुदा की सल्तनत है, वह अपनी मख़लूक़ को हर वक़्त देखता है। साधारण से साधारण चीज़ से लेकर बड़ी से बड़ी चीज़ की ख़बर रखता है। फिर उससे किस मुँह से कहूँ, जो कुछ उसे मंज़ूर होगा, वह बिना माँगे ही दे देगा। बन्दे के लिए सब्र से काम लेना ही अच्छा है।"

एक बार बसरा नगर में अकाल पड़ा तो लोगों ने हज़रत राबिआ (रह.) से इस बात की शिकायत की। उन्होंने फ़रमाया, "अगर खाने का एक दाना भी एक मिस्क़ाल (रत्ती) सोने के मूल्य पर बिकने लगे तो भी मुझे परवाह नहीं। क्योंकि हमारा काम उसकी इबादत करना है जैसाकि हमें हुक्म दिया गया है, और उस (अल्लाह) का काम हमें रोज़ी देना है जैसाकि उसने वादा किया है।"

वास्तव में अल्लाह तआला अन्नदाता हैं, सभी को रोज़ी देते हैं। बन्दों का काम अल्लाह तआला की आज्ञा का पालन करना है, आज्ञापालन से ही अल्लाह तआला ख़ुश होते हैं।

एक बार हज़रत राबिआ (रह.) क़ब्रिस्तान की ओर गईं उनके सामने एक व्यक्ति आया और उसने कहा, "मेरे लिए दुआ कीजिए।" उन्होंने फ़रमाया, "ख़ुदा तआला तुझपर रहम करे। ख़ुदा तआला की इताअत (आज्ञापालन) कर और उससे दुआ माँग, क्योंकि वह बेक़रार और बेचैन की दुआ क़बूल करता है।"

एक व्यक्ति के सामने भेड़ के बच्चे का भुना हुआ गोश्त रखा था। हज़रत राबिआ (रह.) उधर से गुज़रीं तो उसको देखकर रोने लगीं। उस व्यक्ति ने उनसे रोने की वजह पूछी तो हज़रत राबिआ (रह.) ने कहा, "ये जानवर तो मुर्दा हालत में आग में डाले जाते हैं, लेकिन अफ़सोस है इनसानों पर कि वे क़ियामत के दिन ज़िन्दा हालत में आग में डाले जाएँगे।"

यानी दूसरे जानदारों से क़ियामत के दिन कोई हिसाब नहीं लिया जाएगा और इनसानों से हिसाब लिया जाएगा। क़ियामत के ख़याल से ही उन्होंने अपनी उम्र को लोगों को उपदेश देने और अल्लाह की इबादत पर न्यौछावर कर दिया था। वे फ़र्ज़ नमाज़ों के अलावा हर दिन कई-कई रकअतें नफ़्ल नमाज़ें पढ़ती थीं और कहा करती थीं कि, "मुझे आश्चर्य है उस आँख पर जो सोती है, हालाँकि वह जानती है कि क़ब्र के अँधेरे में कितने समय तक सोना है!"

अबू शव्वाल की बेटी अब्दा से रिवायत है कि "मैं हज़रत राबिआ

(रह.) की सेवा में रहा करती थी। वे रात भर ख़ुदा की इबादत में लगी रहती थीं। जब पौ फटती तो थोड़ी देर के लिए अपने मुसल्ले (छोटी-सी चटाई या दरी जिसपर नमाज़ पढ़ी जाती है) पर थोड़ी-सी देर के लिए सो जातीं, यहाँ तक कि सुबह ख़ूब रौशन हो जाती। वे उस समय अपनी नींद से इस प्रकार जागतीं कि मानो घबराई हुई हैं। मैं उस समय उनके मुख से ये शब्द सुना करती थी – ऐ मन! तू कितना सोएगा। वह दिन क़रीब है जबकि तू ऐसा सोएगा कि क़ियामत के दिन सूर (नरसिंघा) की आवाज़ तुझे जगाएगी!"

कुछ किताबों में यह भी आया है कि रात भर की इबादत के बाद जब सुबह क़रीब होती तो हज़रत राबिआ (रह.) फ़रमातीं, "आज रात की इबादत का शुक्र यह है कि आज मैं रोज़ा रखूँ।" सो वे दिन को रोज़ा रखतीं। प्रतिदिन रोज़े रखने से उनके चेहरे का रंग बदल गया था और बहुत ज़्यादा इबादत करने से चलने-फिरने की ताक़त न रही थी, और रोने-धोने की अधिकता के कारण आँखों की ज्योति धुँधला गई थी। इन सब बातों के बावजूद कहती थीं – "काश कि मैं इस क़ाबिल ही न होती कि मेरी चर्चा की जाती!"

हज़रत इमाम रबीआ (रह.) की माँ

इल्म की दौलत दुनिया में सबसे बड़ी दौलत है। इसके सामने रुपया-पैसा, हुकूमत और राज्य की कोई हैसियत नहीं है। आलिम का रुतबा जाहिल से बेहतर है। जिस तरह थोड़ी-सी रौशनी भी बहुत लोकप्रिय होती है उसी तरह ज्ञान का प्रकाश भी अज्ञानता के अँधेरे के लिए शुभ है। ज्ञान के कारण ही आदमी को फ़रिश्तों पर श्रेष्ठता प्राप्त हुई। हज़रत आदम (अलै.) का रुतबा बुलन्द हुआ और वे अल्लाह के ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) कहलाए। इसी के द्वारा आख़िरत में अल्लाह का दीदार (दर्शन) नसीब होगा।

इसी लिए जो लोग अक़्लमन्द हैं वे इल्म की तरफ़ ध्यान देते हैं और इस काम में पैसा ख़र्च करने की परवाह नहीं करते।

चुनांचे इमाम रबीआ (रह.) एक बड़े आलिम हुए हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा में उनकी माँ का बड़ा हाथ था। उनके बाप बनी उमैया की बादशाही के ज़माने में फ़ौज में नौकर थे और फ़ौज के साथ इधर-उधर आते-जाते रहते थे। एक बार वे बहुत-सी लड़ाइयों में शरीक हुए जिनमें सत्ताईस (27) वर्ष लगे। हज़रत रबीआ (रह.) उनके जाने के कुछ महीने बाद पैदा हुए और उनकी अनुपस्थिति में ही जवान हुए।

कहते हैं कि हज़रत रबीआ के बाप उनकी माँ को तीस हज़ार अशरफ़ियाँ दे गए थे। उनकी माँ बड़ी नेक और भली औरत थीं। उन्होंने सोचा, "अगर यह रुपया रखा रहा तो चोर-डाकू इसकी ताक में लगे रहेंगे और हर समय जान संकट में फँसी रहेगी। इससे अच्छी बात यह है कि मैं इस रुपये को अपने बेटे की शिक्षा पर ख़र्च कर दूँ। इस प्रकार दोनों तरह का सुकून मिलेगा, रुपया भी सही जगह ख़र्च हो जाएगा और मेरा बेटा पढ़-लिख भी लेगा।

यह उनकी सूझबूझ की बात थी, वे उस रुपये को अन्य कामों में भी ख़र्च कर सकती थीं। नाच-रंग, तमाशे, खेलकूद हज़ारों प्रकार के शौक़ औरतों में होते हैं, वे क़ीमती ज़ेवर की तमन्ना रखती हैं, अच्छे से अच्छे कपड़े पहनना चाहती हैं। मगर इमाम साहब की माँ सुलझी हुई औरत थीं। वे जानती थीं कि ये सब चीज़ें यहीं रह जानेवाली हैं लेकिन इल्म की दौलत न कभी घटती है और न ही कम होती है, और फिर दीन का इल्म तो अल्लाह की बड़ी नेमत है।

एक हदीस में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने फ़रमाया है –

> "जब कोई इल्म का तलबगार घर से दीन का इल्म सीखने निकलता है तो क़दम-क़दम पर एक साल की इबादत का सवाब मिलता है। क़दम-क़दम पर जन्नत में एक-एक दरजा बुलन्द होता है। ज़मीन उसके लिए कुशलता व भलाई की दुआ करती है। फ़रिश्ते उसकी नेकियों के गवाह बनते हैं और इल्म चाहनेवाले की सुबह भी अच्छी है और शाम भी अच्छी है, हर वक़्त उसके लिए मग़फ़िरत व बख़्शिश तैयार है।"

अल्लाह ने इल्म चाहनेवाले का यह रुतबा इसलिए रखा है कि जब तक इल्म और अल्लाह की याद बाक़ी है उस वक़्त तक ज़िन्दगी बाक़ी है। ज़िन्दगी की चाहत किसे नहीं होती। विशेषकर औलाद की ज़िन्दगी के लिए तो मनौतियाँ मानी जाती हैं, दुआएँ की जाती हैं, फिर अपने बच्चे का भविष्य बनाना भी माँ का पहला काम है। और अपनी औलाद को प्रशिक्षित करना भी उसका फ़र्ज़ है।

ये सब बातें सोचकर उन्होंने अपने प्यारे बेटे को दीन का इल्म हासिल करने का प्रबन्ध किया और इसी काम में सब अशरफ़ियाँ लगा दीं। अल्लाह तआला ने उनकी सच्ची नीयत का फल यह दिया कि वे चन्द सालों में एक बड़े आलिम-फ़ाज़िल (बड़े विद्वान) बन गए। और हज़रत इमाम मलिक (रह.) तथा हज़रत हसन बसरी (रह.) जो इल्मे दीन (धार्मिक ज्ञान) के सूरज और चाँद कहे जाते हैं इन्हीं के शिष्य हुए।

जब रबीआ (रह.) के बाप लौटकर आए तो रबीआ जवान हो चुके थे,

वे मस्जिद में लोगों को नसीहत व उपदेश दिया करते थे। बहुत-से लोग इकट्ठे होकर उनकी सच्ची बातें सुना करते थे। चुनांचे जब उनके बाप लौटकर आए तो उन्होंने बीवी से अशरफ़ियों के बारे में पूछा। उनकी बीवी ने कहा कि, "सब हिफ़ाज़त से रखी हैं। घबराइए नहीं। अभी आप चलकर आए हैं, आराम कर लिजिए।"

इसी बीच में हज़रत रबीआ (रह.) मस्जिद में जाकर हदीस सुनाने में व्यस्त हो गए, उनके बाप भी वहाँ गए। मस्जिद इधर से उधर तक भरी हुई थी। आनेवालों का ताँता लगा हुआ था और तक़रीर हो रही थी। चारों तरफ़ अल्लाह की रहमत बरस रही थी।

इमाम रबीआ के बाप ने यह दृश्य अपनी आँखों से देखा कि उनका बेटा इतने सारे लोगों का इमाम व पेशवा हो रहा है तो ख़ुशी के मारे फूले न समाए। अल्लाह का लाख-लाख शुक्र अदा किया। मजलिस समाप्त होने पर घर लौटकर आए तो बीवी से भी कहा और बड़ी तारीफ़ की। वास्तव में नेक और योग्य औलाद तारीफ़ के क़ाबिल होती ही है। वह दुनिया में भी माँ-बाप की इज़्ज़त बढ़ाती है और आख़िरत में अल्लाह की प्रसन्नता का कारण बनती है। इमाम रबीआ (रह.) की अच्छाई को देखकर ही उनके बाप उनकी प्रशंसा कर रहे थे। उस वक़्त उनकी बीवी ने कहा, "बताओ तीस हज़ार अशरफ़ियाँ अच्छी हैं या यह नेमत ?" वे बोले, "नेक औलाद के सामने अशरफ़ियों की क्या हक़ीक़त है! अशरिफ़याँ तो आनी-जानी चीज़ हैं, आज हैं कल नहीं, लेकिन नेक औलाद मुश्किल से मिलती है।"

इमाम रबीआ (रह.) की माँ ने जवाब दिया, "बस, तो मैंने अपने बेटे को पढ़ाने-लिखाने में ही सारी अशरफ़ियाँ ख़र्च कर दीं।"

हज़रत शअ्वाना (रह.)

अल्लाह तआला जब किसी को सीधा रास्ता दिखाना चाहते हैं तो वैसे ही हालात पैदा कर देते हैं, फिर अगर वह व्यक्ति नेक और भला बनना चाहता है तो अल्लाह तआला की तरफ़ से उसकी सहायता की जाती है। वह एक क़दम अल्लाह की ओर बढ़ता है तो अल्लाह तआला दस क़दम उसकी ओर आते हैं। वह एक बार अल्लाह का नाम लेता है तो अल्लाह तआला आसमानवालों (फ़रिश्तों) में उसका ज़िक्र करते हैं और दुनिया में भी उसका रुतबा बुलन्द कर देते हैं।

हज़रत शअ्वाना (रह.) एक ऐसी ही औरत थीं जिनपर अल्लाह तआला ने अपनी मेहरबानियों की वर्षा की और उन्हें बुराइयों के गढ़े से निकालकर नेकी के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने का सौभाग्य प्रदान किया।

कहते हैं कि वे बसरा नगर में गाने-बजाने का पेशा किया करती थीं और ऐसी प्रसिद्ध गायिका थीं कि नगर भर में शादी-ब्याह का कोई कार्यक्रम भी होता, उनको ज़रूर बुलाया जाता, ताकि महफ़िल की रौनक़ बढ़ जाए। लोग दूर-दूर से उनका गाना सुनने के लिए आते थे और मज़े लेते थे। उन्हें भी इससे लाभ पहुँचता था और महफ़िल में ख़ूब रुपया बरसता था।

वर्षों इसी प्रकार बीत गए। शैतान ने हज़रत शअ्वाना (रह.) को कभी ऐसा मौक़ा ही न दिया कि वे कुछ सोचतीं और इस बेशर्मी की ज़िन्दगी पर कभी अफ़सोस करतीं। नाचना तथा गाना-बजाना ही उनके जीवन का मक़सद था। मगर इनसान की प्रकृति भलाई को पसन्द करती है। वह बुराई को अधिक दिनों तक स्वीकार नहीं कर सकती, एक न एक दिन परदा हटता है और उसकी आँखें खुल जाती हैं।

चुनांचे ऐसा ही हुआ। एक दिन हज़रत शअ्वाना (रह.) अपनी कुछ दासियों के साथ किसी सभा में जा रही थीं। अचानक रास्ते में उन्हें रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने एक दासी को भेजा कि जाकर देखे कि यह मातम किसके यहाँ हो रहा है। दासी गई मगर बहुत देर तक लौट कर नहीं आई। हज़रत शअ्वाना (रह.) ने कुछ इन्तिज़ार के बाद दूसरी दासी को भेजा, परन्तु वह भी वापस न हुई। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। आख़िर वे दूसरी सेविकाओं के साथ उस ओर चल पड़ीं ताकि ख़ुद देखें कि क्या माजरा है। वहाँ पहुँचकर देखा कि एक बड़ी भीड़ इकट्ठी है और हज़रत सालेह मरसी (रह.) लोगों को दीन की बातें बता रहे हैं। सुननेवालों पर उनकी प्रभावकारी बातों से अजीब कैफ़ियत छाई है। हज़रत शअ्वाना भी वहाँ बैठ गईं और दीन की बातें सुनने लगीं।

हज़रत सालेह (रह.) उस समय क़ियामत की मुसीबतों और जहन्नम के भयानक दृश्यों को बयान कर रहे थे। हज़रत शअ्वाना (रह.) के दिल पर इन बातों ने तीर का काम किया। वे रो पड़ीं और अपनी पिछली ज़िन्दगी पर पश्चात्ताप करने लगीं कि हाय अफ़सोस ज़िन्दगी के इतने दिन ग़फ़लत और लापरवाही में बीत गए! चार दिन के मज़े के लिए अल्लाह को भी नाराज़ किया और अपनी जान को भी तबाही में डाल दिया। जहन्नम की लपटें जब शरीर को जलाएँगी तब क्या होगा? वहाँ साँप और बिच्छू जब मुँह फाड़कर काटने को दौड़ेंगे तो उनसे बचने का क्या उपाय होगा? जब भयानक सूरतवाले फ़रिश्ते भारी-भारी गुर्ज़ (गदा) मारेंगे तो कैसे बचा जाएगा?

आख़िर जब कोई तरकीब समझ में न आई तो बेताब होकर उन्होंने पूछा, "हज़रत अगर मैं तौबा करूँ तो क्या अल्लाह मेरी तौबा क़बूल कर लेगा?" हज़रत सालेह (रह.) ने कहा, "बेशक!" शअ्वाना (रह.) ने फिर कहा, "मगर मेरे गुनाह तो अनगिनत हैं।" हज़रत सालेह (रह.) ने उत्तर दिया, "तेरे गुनाहों की हैसियत ही क्या है? ख़ुदा की क़सम, अगर तू शअ्वाना जैसी गुनाहगार भी होती तो भी वह तेरी तौबा क़बूल कर लेता। क्योंकि अल्लाह तआला को तौबा करनेवाले लोग बहुत पसन्द हैं।"

हज़रत शअ्वाना (रह.) ने इतना सुनकर कहा, "हज़रत मैं शअ्वाना ही हूँ, अब तक मैंने अपनी उम्र ख़ुदा को भूले रहने में गँवाई है। शैतान ने मुझे अपने जाल में फँसा रखा था और मुझे सिवाय ऐशो-आराम के कुछ दिखाई न देता था। लेकिन आज मैं आपको गवाह बनाकर कहती हूँ कि मैंने तौबा की और नीयत करती हूँ कि कभी अल्लाह नाफ़रमानी नहीं करूँगी!"

इसके बाद उन्होंने अपनी दासियों को मुक्त कर दिया। अपनी दौलत को अल्लाह की राह में वक़्फ़ कर दिया और परहेज़गारी की ज़िन्दगी गुज़ारने लगीं, वे अपनी पिछली ज़िन्दगी को सोचकर बहुत रोतीं और ख़ुदा के सामने गिड़गिड़ाती थीं।

उनका नियम यह था कि रात के समय मुसल्ले पर जातीं और काबा की ओर मुँह करके बैठकर यह दुआ माँगती थीं –

"ऐ अल्लाह! मुझे तेरी बहुत चाह है और तुझसे बड़ी उम्मीद है क्योंकि तू उम्मीदवारों को निराश नहीं करता। ऐ ख़ुदा! मरने के बाद मैं तेरी पनाह चाहती हूँ। अगर तू माफ़ कर दे तो तुझसे बेहतर और कौन माफ़ करनेवाला है। और अगर तू अज़ाब (सज़ा) दे तो तुझसे ज़्यादा कौन इनसाफ़ करनेवाला है।

ऐ आक़ा! मेरे मन ने मुहलत पाकर बुराई की है, अब तेरी मेहरबानी पर नज़र है। ऐ ख़ुदा! तू ज़िन्दगी में सदा मुझपर मेहरबान रहा, तो मौत के बाद भी मुझपर मेहरबानी करना। मुझे तुझसे उम्मीद है क्योंकि अगर तू मेरा अपमान चाहता तो मुझे सीधा रास्ता न दिखाता।

ऐ मालिक! तू मेरे ऐबों को ढक दे। मुझे नहीं लगता कि तू मेरी उस ज़रूरत को रद्द कर देगा जिसकी चाह में मैंने अपनी उम्र लगाई। ऐ ख़ुदा, अगर मेरे गुनाह न होते तो मुझे तेरे अज़ाब का डर न होता और अगर मुझे तेरी मेहरबानी के बारे में मालूम न होता तो सवाब की उम्मीद न होती।"

इसके बाद वे बराबर रोतीं और इतना रोतीं कि देखनेवालों को दया

आती। चुनांचे एक बार एक बुज़ुर्ग उनसे मिलने गए और कहा, "ऐ शअ्वाना, इतना क्यों रोती हो ? तुम्हें चाहिए कि अपनी जान पर दया करो।"

यह सुनकर हज़रत शअ्वाना (रह.) फिर रोईं और कहा, "ख़ुदा की क़सम, मैं तो यह चाहती हूँ कि इतना रोऊँ कि मेरी आँखों में एक आँसू, एक ख़ून की बूंद तक न रहे, लेकिन मुझे रोना आता ही कहाँ है।" बार-बार यही कहती रहीं यहाँ तक कि ग़श खाकर गिर पड़ीं।

हज़रत सैयदा नफ़ीसा बिन्ते हसन (रह.)

यूँ तो दुनिया में लाखों लोग पैदा हुए और मर गए। कोई उनको जानता भी नहीं कि वे कौन थे, कहाँ पैदा हुए और कब गुज़र गए। लेकिन वे लोग जो दुनिया में आकर अच्छे काम करते हैं, दूसरों के दुख-दर्द में काम आते हैं और लोगों को भलाई की बातें बताते हैं, वे हमेशा याद रखे जाते हैं।

हज़रत सैयदा नफ़ीसा बिन्ते हसन (रह.) ऐसी ही नेक औरत थीं जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की याद में बिताई और अपने अच्छे व्यवहार के द्वारा लोगों के दिलों में जगह बनाई। हदीस में है कि बन्दा अपने अच्छे अख़लाक़ के कारण आख़िरत में भी ऊँचा रुतबा पाता है और दुनिया में भी उसकी इज़्ज़त होती है। सच बोलना, पड़ोसी और दोस्त की सहायता करना, वादे को पूरा करना, माँगनेवाले को देना, भलाई का बदला चुकाना, अमानत की रक्षा करना, मेहमानों की इज़्ज़त करना और आँख में शर्म रखना ये सब अच्छे अख़लाक़ हैं। अल्लाह तआला ये ख़ूबियाँ उन लोगों को देते हैं जिनकी भलाई उन्हें मंज़ूर होती है।

हज़रत नफ़ीसा (रह.) को अल्लाह तआला की ओर से ये अच्छी नेमतें मिली थीं। वे हमेशा सच बोलती थीं, पड़ोसियों से प्रेमपूर्वक मिलती-जुलती थीं और मेहमानों से इज़्ज़त का बर्ताव करती थीं। मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम सब उनकी प्रशंसा करते थे और प्रायः उनकी सेवा में हाज़िर होकर अच्छी बातें सीखते थे।

कहते हैं कि उनके घर के पास यहूदी आबाद थे। जैसाकि सबको मालूम है कि वे लोग मुसलमानों को बिल्कुल पसन्द नहीं करते, बल्कि अवसर मिलते है नुक़सान पहुँचाने की सोचते। लेकिन हज़रत नफ़ीसा के अच्छे व्यवहार ने उनके

दिल को भी ऐसा मोह लिया था कि वे भी उनकी इज़्ज़त करते थे। उनके पास उनकी औरतें आकर बैठती; घण्टों नेकी और अच्छाई की बातें सुनती थीं। वे भी उनके साथ आदर से पेश आतीं और पड़ोसी के अधिकार का पूरा ख़याल रखती थीं। उनकी इन बातों का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ रहा था और मुसलमानों से यहूदियों की नफ़रत दूर होती जा रही थी, इस बीच में एक घटना हो गई।

एक यहूदी की लड़की के हाथ-पाँव बेकार थे। वह चल-फिर नहीं सकती थी। उसके माँ-बाप भी बहुत परेशान थे। एक दिन लड़की की माँ कहीं जाने लगी तो उसने कहा कि चल तुझे भी उठाकर ले चलूँ। लड़की ने इनकार कर दिया। माँ ने कहा, "तो फिर तू यहाँ अकेली पड़ी रहेगी।" लड़की ने अपनी इच्छा प्रकट की, "मैं तो यह चाहती हूँ कि तुम जब तक न आओ मैं अपनी बुज़ुर्ग पड़ोसन के पास रहूँ।"

अगर लड़की किसी और मुसलमान के घर जाने के लिए कहती तो शायद उसकी माँ उसका कहना न मानती। लेकिन हज़रत नफ़ीसा (रह.) के बारे में वह जानती थी कि वे बहुत अच्छी हैं, बच्चों से मुहब्बत करती हैं और अगर मेरी बेटी उनके पास रहेगी तो वे उसे अच्छी बातें भी बातएँगी। अत: वह लड़की को लेकर हज़रत नफ़ीसा (रह.) के घर आई और उनसे इजाज़त लेकर लड़की को एक कोने में बिठाकर चली गई।

हज़रत नफ़ीसा (रह.) ने उसको प्यार के साथ रखा, प्यार से खाना खिलाया। अल्लाह तआला की क़ुदरत देखिए कि वह अपने नेक बन्दों की इज़्ज़त किस तरह बढ़ाता है और जब उसे सच्चे जज़्बे से पुकारा जाता है तो वह किस तरह सुनता है। यानी इधर तो वह अपाहिज लड़की हज़रत नफ़ीसा (रह.) के घर आई, उधर उसको आराम हो गया। उसके शरीर में ताक़त आ गई। उसके पैर हरकत करने लगे और वह भागती हुई अपने घर गई, दरवाज़ा खटखटाया, माँ ने किवाड़ खोले कि देखूँ कौन है । बाहर निकली थी कि लड़की पाँव से लिपट गई।

माँ को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि लड़की बीमार थी, अपाहिज थी, बिना दूसरे की सहायता के चल-फिर भी नहीं सकती थी, जिसके हज़ारों इलाज हो चुके थे और हर ओर से निराश होना पड़ा था, आज ज़रा-सी देर में कैसे स्वस्थ हो गई। कैसे उसके पैरों में ताक़त आ गई और किस तरह चलकर यह यहाँ तक पहुँची है। आख़िर उसकी समझ में आ गया कि यह सब सैयदा नफ़ीसा (रह.) की बरकत है। वे अल्लाह की नेक बन्दी हैं इसलिए अल्लाह ने उनकी दुआ से मेरी बेटी को अच्छा कर दिया। उनका दीन सच्चा है। हम लोग बड़े अँधेरे में हैं और इस्लाम की नेमत से महरूम हैं। इतनी उम्र व्यर्थ में बर्बाद कर दी, हमेशा इस्लाम से दुश्मनी करते रहे और उसकी अच्छाई को सोचा भी नहीं।

यह सोचकर वह बहुत रोई, उसके दिल में बड़ी बेचैनी थी। किसी काम में जी नहीं लग रहा था। आख़िर वह हज़रत नफ़ीसा (रह.) की सेवा में आई और अपने दिल की हालत बयान की। हज़रत नफ़ीसा (रह.) ने उसको समझाया कि इस सृष्टि को अल्लाह तआला ने बनाया है। इनसानों को भी अल्लाह ही ने पैदा किया है, इसलिए अल्लाह ही के हुक्मों पर चलना चाहिए। इस्लाम यही सिखाता है। जो लोग अल्लाह पर ईमान ले आते हैं और अच्छे काम करते हैं, वे दुनिया और आख़िरत दोनों जगह मज़े से रहेंगे। लेकिन जो लोग अल्लाह की नाफ़रमानी करेंगे वे जहन्नम का ईंधन बनेंगे। यह शिक्षा पहले तुम्हारे यहाँ भी थी मगर लोगों ने उसपर अमल करना छोड़ दिया था। इसलिए अल्लाह तआला ने संसार के सुधार के लिए प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को भेजा। उन्होंने आकर सच्चाई का रास्ता दिखाया। हम लोग उनकी पैग़म्बरी पर ईमान लाए हैं। आदमी के लिए ईमान लाना ही अच्छा है।

उसके दिले में तीर तो पहले ही लग चुका था अब और भी इस्लाम की बड़ाई दिल में बैठ गई। उसने तुरन्त कलिमा पढ़ लिया और इस्लाम की दौलत लेकर घर लौटी।

शाम को लड़की का बाप घर आया, वह भी अपनी लड़की को स्वस्थ पाकर चकित रह गया। बीवी से पूछा। उस ख़ुशक़िस्मत ने सारी घटना सुना

डाली। पूरी बात सुनकर वह भी बोल उठा कि यह दीन सच्चा है, इसके अन्दर सारी दुनिया की अच्छाइयाँ मौजूद हैं और आदमी की भलाई के लिए इसके सिवा और कोई मज़हब नहीं हो सकता। हर आदमी को इसी मज़हब पर चलना चाहिए। तात्पर्य यह कि अल्लाह ने उसे भी हिदायत दी। वह भी हज़रत नफ़ीसा (रह.) के पास आया और इस्लाम क़बूल कर लिया।

अल्लाह तआला सबको ईमान पर जमना मुबारक करे !

हज़रत फ़ातिमा (रह.) बिन्ते अब्दुल मलिक बिन मरवान

अल्लाह तआला के नेक बन्दे अपने नफ़्स (मन) को दीन की बातों का पाबन्द बनाते हैं और कोशिश करते हैं कि कोई बात दीन के ख़िलाफ़ न हो। साथ ही धन-दौलत, इज़्ज़त-आबरू, नौकर-चाकर, साज़ो-सामान और हुकूमत व राज्य के होते हुए भी अपना दिमाग़ ख़राब नहीं करते। अल्लाह तआला को भूल नहीं जाते, बल्कि अगर मौक़ा आता है तो वे अपनी प्यारी से प्यारी चीज़ को उसकी राह में लुटा देते हैं।

इस सम्बन्ध में हम एक ऐतिहासिक घटना प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे हमारी बात की सच्चाई का पता चलेगा। हज़रत फ़ातिमा (रह.) बिन्ते अब्दुल मलिक बिन मरवान पुश्तैनी रईस की बेटी थीं। उनके बाप इस्लामी हुकूमत के ख़लीफ़ा थे। वे उस समय की दुनिया के सबसे बड़े बादशाह थे। अत: वे शाही ठाट-बाट के साथ पलकर जवान हुईं और उनकी शादी भी हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) जैसे बड़े धनवान व्यक्ति से हुई जो अपने समय के बेहद अच्छी वेशभूषा में रहनेवाले, नौजवान थे और दिन में कई-कई बार कपड़े बदलते थे।

लेकिन भाग्य नें जब उनको ख़लीफ़ा बना दिया तो एकदम उनके स्वभाव में जैसे क्रान्ति आ गई। ज़िम्मेदारी के एहसास ने उनके अन्दर एक ज़बरदस्त तब्दीली पैदा कर दी। क़ियामत में अल्लाह के सामने जवाब देने के ख़याल ने उनकी काया पलट दी और चमकते-दमकते लिबास, अमीरों जैसे ठाट-बाट और शाही आन-बान को ठोकर मारकर उन्होंने तय किया कि अब वे बिल्कुल सादगी के साथ जीवन गुज़ारेंगे।

यह एक बड़ा फ़ैसला था और अपनी ज़िन्दगी में इसे लागू करने के साथ ही उसपर जमे रहना और भी बड़ा काम था। लेकिन जिस आदमी को यह मालूम हो गया हो कि मुझे मरना है, इस दुनिया से चले जाना है, यहाँ की हर चीज़ मिट जानेवाली है और अल्लाह को इस ज़िन्दगी का हिसाब देना है, तो ख़ुद ही उसका दिल किसी चीज़ में नहीं लगता, दुनिया से उसका रिश्ता कम हो जाता है और मौत का ख़याल हर वक़्त उसके सामने रहता है। यही हालत हज़रत फ़ातिमा (रह.) की हुई। जब फ़ातिमा उस समय की मलिका के रूप में शाही महल में दाख़िल हुईं, वे उससे पहले काफ़ी समय तक अपने पति के साथ रह चुकी थीं। वे अपने पति के स्वभाव, उनके अमीरोंवाले ठाट-बाट और शानो-शौकत से वाक़िफ़ थीं और आज वह दिन था कि धरती की सबसे बड़ी मलिका, भूतपूर्व शासक की बेटी, फ़ातिमा के स्वागत के लिए सेविकाएँ और दासियाँ अदब से खड़ी हैं , चमकते-दमकते कपड़े और सोने-चाँदी के चमकते हुए आभूषण जिस्म की शोभा बढ़ा रहे हैं, गले में नौलक्खा हार जगमग-जगमग कर रहा है।

दूसरी ओर हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) मुसलमानों के 'अमीर' और 'ख़लीफ़ा' पहले से बिल्कुल भिन्न, बिल्कुल अलग, बिल्कुल बदले हुए, बिल्कुल सादा लिबास और साधारण वेशभूषा में खड़े हैं और चाहते हैं कि उनकी पत्नी सादगी के साथ जीवन गुज़ारे।

पत्नी का जीवन पति के साथ जुड़ा है। पति की आज्ञा का पालन और फ़रमाँबरदारी उसकी सबसे बड़ी ख़ुशी है। अपने पति के इशारे पर अपना सबकुछ क़ुरबान कर देना उसका सबसे बड़ा फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) है। मगर कभी-कभी ज़िन्दगी में वह क्षण सामने आ जाता है जब एक औरत को सोचना पड़ता है कि वह क्या करे ? पति की बात माने या न माने ? उसके आदेश का पालन करे या नहीं ? फ़ातिमा (रह.) के सामने उस समय यही सवाल था। यह कौन नहीं जानता कि क़ीमती आभूषण और भड़कीले वस्त्रों से औरत को कितना प्यार होता है। उसका सारा जीवन इन्हीं चीज़ों के आस-पास घूमता है। सुन्दर वस्त्रों से वह अपने दिल की प्यास बुझाती है। लेकिन ठीक उस वक़्त जबकि उनके क़ीमती कपड़ों से चाँद

और सूरज की आँखें भी चकाचौंध होनेवाली थीं और उनके बाल-बाल में मोती पिरोने की तैयारियाँ हो रही थीं, दुनिया के क़ीमती से क़ीमती हीरे-मोती उनके वस्त्रों की शोभा बननेवाले थे कि उनके पति ख़लीफ़ा उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) ने कहा –

"फ़ातिमा! ये ज़ेवर, ये हीरे-मोती, ये क़ीमती हार न मेरे हैं न तुम्हारे, ये मुसलमानों के बैतुलमाल (धनकोष) का हिस्सा हैं। जो तुम्हारे वालिद ने बैतुलमाल से ज़बरदस्ती लेकर तुम्हें दे दिए हैं। यह बात ठीक नहीं है। बैतुलमाल आम जनता की अमानत होता है, उसका धन उन्हीं की भलाई के कामों पर ख़र्च होना चाहिए। उस माल को बादशाह अपने ऊपर ख़र्च करे यह बात इस्लाम की शिक्षा के विरुद्ध है। तुम्हारी चीज़ें भी बैतुलमाल का हिस्सा हैं, इनको भी बैतुलमाल में जाना चाहिए। तुम इस बारे में सोच लो। मैं तो एक फ़ैसला कर चुका हूँ, यानी अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारना और अल्लाह के रसूल (सल्ल.) तथा आप (सल्ल.) के क़ाबिले एहतिराम सहाबा (रज़ि.) का अनुसरण करना। तुम अगर मेरे साथ रहना चाहती हो तो मेरे कहने पर अमल करो और अगर ऐसा न कर सको तो मुझे इजाज़त दो कि मैं तुमसे अलग होकर अपनी ज़िन्दगी शुरू करूँ।"

यह एक निर्णायक क्षण था, फ़र्ज़ व मुहब्बत की कशमकश सामने थी। एक तरफ़ दुनिया की सबसे बड़ी मलिका बनने की तमन्ना थी तो दूसरी तरफ़ पति की आज्ञापालन व फ़रमाँबरदारी थी। इधर ज़िन्दगी के दिखावे और ऐशो-आराम की चाह थी, उधर अल्लाह की ख़ुशनूदी का सवाल था। इधर शोभा व साज-सज्जा का बेपनाह जोश था और उसके मुक़ाबले में इस्लामी राज्य की ज़िम्मेदारी का एहसास था। एक अजीब उलझन थी जिसमें फ़ातिमा (रह.) उलझ रही थीं। शैतान खड़ा मुस्करा रहा था। ऐशो-आराम के ख़यालात का हुजूम था। सुनहरे-रूपहले भविष्य के परदे उठ रहे थे।

लेकिन उसी पल मन के झरोखों से अचानक उन्होंने देखा कि उस सारी आन-बान के पीछे अंधियारे फैले हुए हैं। और वे सोचने लगीं, "इनसान की

आयु ही कितनी है ? – दस-बीस, पचास या सौ साल – फिर आख़िर वस्त्र, क़ीमती आभूषण, दुनिया का यह शोर-ग़ुल, सब समाप्त हो जानेवाला है और फिर क़ियामत का हिसाब ? यहाँ जो कुछ खाएँगे, जो कुछ पहनेंगे, जो चीज़ इस्तेमाल करेंगे उसका हिसाब देना होगा, तो फिर ऐसी नश्वर चीज़ों से कैसा लगाव और कैसी रुचि ?

और फिर जिस में मेरे पति की इच्छा भी है, वह पति जिसके लिए मैंने घर छोड़ा, माँ-बाप को छोड़ा, अपनी सहेलियों को छोड़ा, जो मेरी ज़िन्दगी का साथी है, मुझे उससे ज़्यादा और क्या चाहिए ? वह ख़ुश तो दिल ख़ुश, और दिल ख़ुश तो संसार ख़ुश।

अत: यह सोचकर हज़रत फ़ातिमा (रह.) ने हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) से कहा, "आप मेरे सरताज हैं, मैं आपकी सेविका हूँ, मेरा मरना-जीना आपके साथ है। आप की ख़ुशी मेरी ख़ुशी है। आपका फ़ैसला मेरा फ़ैसला है। जो राय आप ने दी है वह सही है, बैतुलमाल की अमानत बैतुलमान में दाख़िल कर दीजिए। उसके अतिरिक्त अगर कोई चीज़ मेरे अधिकार में हो और आप उसे बैतुलमाल में देना चाहें तो वह भी हाज़िर है।"

इतना सुनकर हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह.) संतुष्ट हो गए और उन्होंने सारा सामान उसी समय बैतुलमाल में देने का आदेश दे दिया। ये थीं फ़ातिमा (रह.) बिन्ते अब्दुल मलिक बिन मरवान, जिन्होंने अपने मन की इच्छा को मारकर अल्लाह की ख़ुशी के लिए अपने पति की आज्ञा का पालन किया।

हज़रत अमीना ख़ानम (रह.)

जब किसी क़ौम के सामने कोई ऐसा मक़सद होता है जिससे उस क़ौम के सारे लोग सहमत होते हैं तो उस क़ौम का हर व्यक्ति काम करने के लिए बेचैन व बेक़रार हो जाता है। औरतें तक उस मक़सद के लिए अपने सिर और धड़ की बाज़ी लगा देती हैं। उस समय उनकी सबसे बड़ी इच्छा यह होती है कि क़ौमी प्रतिष्ठा पर आँच न आने पाए। कार्य-क्षेत्र से कोई आदमी पीछे न हटे और चाहे जान भी चली जाए मगर मक़सद का दामन हाथ से न छूटे।

चुनांचे आज से कुछ साल पहले जब तुर्की क़ौम पर बुरा समय आया और तीन लाख यूनानी सिपाहियों ने तुर्की को चारों ओर से घेर लिया तो तुर्की क़ौम ने बड़ा साहस दिखाया। हज़ारों नौजवान मैदान में आगए, जहाँ दिन-रात गोलियाँ चलतीं, लोग घायल होते और जंग की आग भड़कती रहती। यह बड़ा नाज़ुक वक़्त था। 'अंगूरा' जो तुर्कों की राजधानी था, ज़ख़्मियों और घायलों से भर गया था। इन ज़ख़्मियों को देखकर बड़ी दया आती थी और दिल में जोश उभरता था कि हमें भी कुछ करना चाहिए।

उस समय हज़रत अमीना ख़ानम (रह.) ने सोचा कि जब देश के ऊपर विनाश के बादल छाए हुए हैं; हर तरफ़ से तुर्की के लोगों को मौत के घाट उतारा जा रहा है, ऐसी हालत में घर में बैठे रहना और आराम के साथ हत्या और लूट-पाट की ख़बरें सुनते रहना ठीक नहीं है। हमें अल्लाह ने हिम्मत और ताक़त दी है तो फिर उससे क्यों न काम लें और क्यों न मैदान में जानेवाले मर्दों की सेवा करें जिससे उनका हौसला बढ़े।

आख़िरकार वे और कुछ दूसरी साहसी औरतें अपने देश की सेवा के लिए जंग के मैदान में पहुँच गईं। उन्होंने मर्दों की तरह काम किया। वे तुर्की की

तीन बड़ी तोपों को खींच कर जंग के मोर्चे पर ले गईं जिससे तुर्की सेना का हौसला बढ़ गया। उनमें इत्मीनान की लहर दौड़ गई। उन्होंने यूनानियों से कई मोर्चे भी छीन लिए।

लेकिन अमीना ख़ानम एक समझदार औरत थीं। वे दिन में मैदाने-जंग में काम करतीं, ज़ख़्मियों को दौड़-दौड़कर पानी पिलातीं और रातों को जागतीं ताकि दुश्मनों से सावधान रहा जा सके। चुनांचे एक रात में उन्होंने खाइयों के पास से एक साया गुज़रते देखा। कोई और होता तो शायद डर जाता। रात का समय, चारों ओर सन्नाटा, दूर एक साया धीरे-धीरे रेंग रहा हो। कैसा भयानक दृश्य होगा। लेकिन अमीना ख़ानम ने डरने के बजाय वस्तुस्थिति को समझने की कोशिश का हो सकता है कि वह कोई जासूस हो जो तुर्की सरहद से यूनानी फ़ौजों की तरफ़ जा रहा है। यह ख़याल आते ही अमीना ख़ानम ने अपना समय नष्ट नहीं किया, बल्कि वे तुरन्त लेफ़्टिनेंट सादिक़ बे के शिविर में पहुँचीं और उन्हें जगाकर पूरी बात बताई। वे जल्द ही बात समझ गए। उन्होंने कहा, "तुम अपनी बंदूक़ से निशाना साधे, मैं उसके पास रेंगता हुआ पहुँचता हूँ।"

अमीना ख़ानम ने आदेश का पालन किया और सादिक़ बे रेंगते हुए साया की ओर बढ़े। अमीना ख़ानम की नज़रें साया पर लगी हुई थीं। उधर जासूस ने यह देखकर कि कोई पीछे आ रहा है, भागना शुरू किया। लेकिन इतने में अमीना ख़ानम ने बंदूक़ चलाई, गोली निशाने पर लगी और जासूस लड़खड़ाकर गिरा। सादिक़ बे भी क़रीब पहुँच चुके थे। उन्होंने देखा कि यह एक यूनानी अफ़सर है। तलाशी लेने पर बहुत-से काग़ज़ात और नक़्शे उसकी जेबों से निकले, जिन्हें क़ब्ज़े में लेकर सादिक़ बे वापस लौटे।

काग़ज़ात और नक़्शों को देखने से पता चला कि तुर्की फ़ौज के आस-पास बारूद की सुरंगों का जाल बिछा हुआ है और एक दिन बाद ये सुरंगें उड़ा दी जाएँगी जिससे तुर्की सेना टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी।

अमीना ख़ानम ने घबराकर पूछा, "तो अब क्या होगा?" सादिक़ बे ने

कहा, "घबराने की बात नहीं। ऐसे मौक़े पर होशो-हवास खो देना बहादुरों का काम नहीं है। उन्हें तो अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। ज़िन्दगी और मौत तो अल्लाह के अधिकार में है, वह जो चाहे सो कर सकता है। हमें उसपर भरोसा करना चाहिए और क़ुरबानी के लिए तैयार रहना चाहिए।"

अमीना ने कहा, "फिर आदेश दीज़िए। मैं हर क़ुरबानी के लिए तैयार हूँ। अगर अपने देश और क़ौम के लिए मेरी जान भी काम आ गई तो कुछ ग़म नहीं। इससे बढ़कर दुनिया में और क्या ख़ुशी हो सकती है कि तुर्की की सरज़मीन को हमारे ख़ून की ज़रूरत हो और वह हम पेश कर दें। अगर अल्लाह की तरफ़ से हमपर जान देने का दायित्व आ पड़ा हो तो हमें चाहिए कि हम उसके मार्ग में अपना सिर कटा दें। मैं एक कमज़ोर औरत ज़रूर हूँ मगर आप देखेंगे कि जो आदेश भी आप मुझे देंगे उसको पूरा करने के लिए मैं अपनी आख़िरी सांस तक कोशिश करूँगी।"

सादिक़ बे ने कहा, "तुम ये काग़ज़ात तुर्की मुख्यालय ले जाओ जो यहाँ से पच्चीस मील की दूरी पर है। अगर तुमने यह यात्रा रात भर में पूरी कर ली तो तुम तुर्की की एक बड़ी सेवा करोगी। हज़ारों सिपाहियों की जान बचाओगी और ख़ुदा ने चाहा तो देश पर छाए संकटों के बादल भी जल्द ही छँट जाएँगे। मैं यहाँ कुछ दूसरे सिपाहियों के साथ नए आदेश की प्रतीक्षा करूँगा।"

अमीना ख़ानम जानती थीं कि यह काम बहुत कठिन है। बीच में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और गहरी नदियाँ पड़ती हैं। जाड़े का मौसम है, बर्फ़ पड़ रही है और दूर तक दुश्मनों की फ़ौज का ख़तरा है। मगर अपने देश की आज़ादी अपनी जान से भी ज़्यादा प्यारी है, एक-एक तुर्की सिपाही इस समय मौत के मुँह में है। अगर कहीं दुश्मन अपनी योजना में सफल हो गए तो तुर्की हमेशा के लिए ग़ुलाम हो जाएगा।

यह सोचकर वे तुरन्त चल पड़ीं और लगातार चलती रहीं। रास्ते में नदियाँ, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ पड़े मगर वे घोड़ा दौड़ातीं आगे बढ़ती रहीं। ऊँची-नीची

पहाड़ियों पर चढ़ते-उतरते उनका घोड़ा ज़ख़्मी हो गया। वे ख़ुद भी थककर चूर हो गईं। कई बार उनके दिल में आया कि थोड़ा आराम करलें, लेकिन इस डर से कि अगर वे जल्द से जल्द तुर्की मुख्यालय पर न पहुँचीं और समय बीत गया तो यूनानियों को मौक़ा मिल जाएगा। हज़ारों तुर्की सिपाहियों की जान जाती रहेगी। "नहीं तुर्की ग़ुलाम नहीं होगा। मैं आराम नहीं करूँगी। ज़रा-सी देर के लिए भी नहीं रुकूँगी।" यह सोचती हुई वे बराबर आगे बढ़ती रहीं और आख़िर सुबह होते-होते अपनी मंज़िल पर पहुँच गईं। उनके पाँव लड़खड़ा रहे थे, आँखें नींद से बोझल थीं परन्तु फिर भी उन्होंने जल्दी से इस्मत पाशा को सादिक़ बे का सन्देश पहुँचा दिया जिससे ठीक समय पर उचित कारवाई की जा सकी और न केवल हज़ारों तुर्की सिपाहियों की जान बच गई, बल्कि अमीना ख़ानम की लगातार मेहनत, क़ुरबानी और कोशिश से यूनानी फ़ौज ही बाद में अपने जाल में फँस गई जिससे सारे देश को बड़ी ख़ुशी हुई। अमीना ख़ानम का नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर चढ़ गया और आज भी तुर्की के इतिहास में अमीना ख़ानम का कारनामा सुनहरे शब्दों में लिखा हुआ है।